पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

(२९)

कलकत्ता
३-९-१९६२

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

धर्मस्नेही...धर्मसेन्ही।

आपका पत्र पहले भी मिला था व शशीभाईका एक और भी। आपने लिखा था कि अब निवृत्ति काल पका, यह पढकर बिजलीके वेगकी तरह आनंदकी लहर आयी थी; कारण पूर्वे निवृत्ति ही विकल्परूपसे निश्चये भजी थी, ऐसा पूरा प्रतीतिमे आता है। अब तो श्री गुरुदेवकी कृपासे न निवृत्त हूँ, न प्रवृत्त हूँ, ऐसा निश्चय हो चुका है व पूर्वके निवृत्तपरिणामोंने अतः अब निश्चयके बजाय व्यवहारका पद ले रखा है। समय लगभग २० दिन पहले आया भी था, बंबई तक जाना भी हुआ था, सोनगढ पहुँचनेके विकल्प भी अधिक हुए थे मगर इधर ही लौटना पडा, ऐसे कारण हो गये थे। अब दशहरेके बाद उधर आना हो सकेगा।

आप लोग साक्षात् चैतन्यमूर्ति गुरुदेवके सान्निध्यमें दशलक्षणी पर्वके अवसर पर अति उत्साहपूर्वक धर्मलाभ लेंगे, मुझ जैसे पुण्यहीनको यह लाभ कहाँ?

अधिक क्या लिखूँ? विकल्पोंको तो धधकती हुई भट्ठीके योंगोका निमित्त है व इस मध्ये ही रहना हो रहा है, जबकि चैतन्यमूर्ति विकल्पोंको छूनेवाली भी नहीं है; अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें श्रद्धामें जमी हुई इस मूर्तिका इस रस आलिंगन कहाँ! चैतन्यमूर्तिके एक रसमें ओत-प्रोत रहें, यह ही भावना।

- धर्मस्नेही निहालचंद्र

(३०)

कलकत्ता
८-११-१९६२

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... शुद्धात्म सत्कार।

वात्सल्यानुराग प्रेरित आपका पत्र, कुटुंबियों का दीपावली कार्ड मिला। श्री सेठियाजी सोनगढ़ पहुँचे, जाना। ज्ञानानंदी गढ, वीतरागप्रधानी गुरुदेवकी प्रशस्त राग अंश निमित्तक सिंहगर्जनाओंसे ४७ नयोंपर

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१७ पर...)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६ः अंक-२५४, वर्ष-२३, जनवरी-२०१९

आषाढ़ शुक्ल १२, बुधवार, दि. २९-६-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-५९, प्रवचन-२१

यह योगसार शास्त्र है। ५८ गाथा हुई। ५८ गाथा में ऐसा कहा था-जैसे आकाश है, (वह) परपदार्थ से शून्य है, ऐसे यह आत्मा परपदार्थ से शून्य है। आकाश में अनेक पदार्थ रहते दिखते होने पर भी, वे अनेक पदार्थ, पदार्थ में रहे हैं, आकाश में नहीं; इसी प्रकार भगवान आत्मा के साथ राग-द्वेष, शरीर, कर्म आदि संयोगी चीजें, या संयोगी भाव दिखते हैं परन्तु जैसे, आकाश में पर नहीं है, वैसे ही आत्मा में वे परपदार्थ नहीं है। समझ में आया? मात्र अन्तर क्या है?-वह बात यहाँ करते हैं।

'**आकाश-समान होने पर भी मैं सचेतक हूँ।**' आकाश में पर नहीं है परन्तु वह आकाश अचेतन है और यह आत्मा ज्ञान, चैतन्यस्वभाव जीव है। उस आकाश में चैतन्यस्वभाव नहीं है-यह बात करते हैं।

जेहउ सुद्ध अयासु जिय तेहउ अप्पा वुत्तु।
आयासु वि जडु जाणि जिय अप्पा चेयणु वंतु।।५९।।

'**हे जीव! जैसा आकाश शुद्ध है, वैसा ही आत्मा शुद्ध है-ऐसा कहा है।**' आकाश अत्यन्त बादलों से.. पंचरंगी बादल हो या पाँच अन्य द्रव्य उसमें हों, परन्तु उनके रंग से वह आकाश रंगा हुआ नहीं है; इसी तरह आत्मा, विकार या संयोग या परचीज से रंगा हुआ नहीं है। यह आकाश शुद्ध है, वैसे आत्मा शुद्ध है-उसका एकाग्र होकर ध्यान करना, इसे योगसार कहते हैं, समझ में आया?

'**हे जीव! आकाश को जड़-अचेतन जान।**' अन्तर इतना। शुद्ध तो दोनों हैं, कहते हैं। आकाश भी शुद्ध है, ऐसे आत्मा भी शुद्ध है। आकाश जड़ शुद्ध है; (आत्मा) चैतन्य शुद्ध है। ज्ञानमूर्ति परम ब्रह्म अनादि-अनन्त-ऐसा आत्मा शुद्ध, आकाश की तरह (शुद्ध है) परन्तु आकाश जड़ और यह चैतन्य है। आकाश, आकाश का ध्यान नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं है, जड़ है। आकाश शुद्ध होने पर भी, आकाश, आकाश का ध्यान करे-ऐसा उसमें है नहीं; और आत्मा आकाश के समान शुद्ध होने पर भी, वह ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञान का ध्यान कर सकता है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु :- शुद्ध को ध्यान करने की आवश्यकता ही कहाँ है?

उत्तर :- शुद्ध को ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है, शुद्ध तो द्रव्य है। क्या कहा? शुद्ध तो द्रव्य हुआ, परन्तु पर्याय में शुद्धता के लिये?

मुमुक्षु :- आकाश को ध्यान करना रहता ही नहीं।

उत्तर :- आकाश को ध्यान करना नहीं रहता, जड़ है, इसलिए-ऐसा कहा। शुद्ध तो वह भी है; इसके लिए तो यह अन्तर कहा है। आकाश शुद्ध है और आत्मा भी शुद्ध है; दोनों में-शुद्ध में अन्तर है। उसे (आकाश को) शुद्धता का ध्यान करने का गुण नहीं है और यहाँ शुद्धता भरी हुई है, यह ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है;

इसलिए उस शुद्धात्मा का ध्यान करने योग्य है-ऐसा कहना है। शुद्ध है, इसलिए ध्यान करे-ऐसा नहीं; चेतन नहीं है, इसलिए ध्यान करने के योग्य नहीं है। समझ में आया? ये तर्क अलग प्रकार के हैं।

ऐसा कहते हैं कि शुद्ध है, उसे क्या ध्यान (करने का है)? शुद्ध है। ध्यान जड़ को नहीं (होता), इसीलिए तो दोनों का अलग किया है। आकाश शुद्ध है, चैतन्य शुद्ध है; चैतन्यजीव शुद्ध है परन्तु जीव शुद्ध है, वह चैतन्य है-चेतनेवाला है। क्या? चेतनेवाला है, जाननेवाला है, एकाग्र होनेवाला है, चेतने के योग्य है-ऐसा कहते हैं। पाठ है न? '**चेयण वंतु**'-वह चेतनवंत है। समझ में आया? भगवान आत्मा (को) आकाश के समान शुद्ध कहा, परन्तु आकाश तो जड़ है। उसे कहाँ मैं शुद्ध हूँ-ऐसा समझना है? यह तो चैतन्य है, वह शुद्ध है-ऐसा चैतन्य जागृत होकर शुद्ध का ध्यान करे, तब पर्याय में शुद्धता प्रगटती है-ऐसा जड़ और चैतन्य में अन्तर है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह चेत सकता है। जड़ में चेतना कहाँ है? अपना चैतन्य शुद्धस्वरूप, उसे चेत सकता है, जान सकता है, जागृत होकर ध्यान कर सकता है, उसमें लीन हो सकता है; इसलिए चैतन्य, आकाश की शुद्धता की अपेक्षा से, इस अपेक्षा से पृथक् पड़ा। समझ में आया?

आकाश भी द्रव्य है और आत्मा भी द्रव्य है, तथापि द्रव्यपने की अपेक्षा से भले समान हो.. समझ में आया? सर्व द्रव्यों में छह सामान्यगुण तो समान है। सामान्यगुण हैं। (वे) इसमें नहीं लिखे होंगे। अस्तित्वगुण आकाश में भी है और आत्मा में भी है-ऐसा कहते हैं। '**सभी द्रव्य सदा हैं और सदा शाश्वत् रहेंगे।**' आकाश भी सदा से है और सदा रहनेवाला है; आत्मा भी सदा से है और सदा रहनेवाला है; तथापि दोनों में अन्तर क्या है?-वह यहाँ बतलाया है। समझ में आया?

द्रव्यत्व है, स्वभाव और विभावदशा उसमें हुआ करती हैं। किसमें? आत्मा में और पर में-सब में, जिसकी योग्यता हो उसमें। द्रवता, द्रवता है। समझ में आया? परमाणु भी स्वभावरूप परिणमता है, पुद्गल विभावरूप परिणमता है, दूसरे चार (द्रव्य) तो स्वभावरूप (परिणमते हैं) परन्तु ऐसे द्रव्यत्वगुण के कारण परिणमित होना, प्रत्येक द्रव्य का सामान्य धर्म है परन्तु इसका (आत्मा का) धर्म अलग प्रकार का है-ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया?

प्रमेयत्व... '**सभी द्रव्य सर्वज्ञ द्वारा जानने योग्य हैं।**' सभी द्रव्य प्रमेयत्व हैं। सभी पदार्थ ज्ञात होने योग्य हैं परन्तु जाननेवाला यह चैतन्य अकेला है। समझ में आया? आत्मा को आकाश के समान कहा परन्तु आकाश सर्वज्ञ से ज्ञात होने योग्य है। इससे (स्वयं से) ज्ञात होने योग्य वह नहीं है. समझ में आया? समानता में अन्तर है, ऐसा। सर्वज्ञ से ज्ञात हो ऐसे आकाशादि हैं। आत्मा भी सर्वज्ञ में (सर्वज्ञ के ज्ञान में) ज्ञात होता है, परन्तु आत्मा को स्वयं, स्वयं से ज्ञात हो ऐसा है। समझ में आया? सर्वज्ञ से ज्ञात ऐसा आत्मा तो है, आकाश भी वैसा है। यह आत्मा तो सचेतन होने के कारण स्वयं अपने से ज्ञात होने योग्य है, यह (गुण) आकाश में नहीं है। समझ में आया?

वस्तुत्व रह गया, देखो! '**सभी द्रव्य अपना-अपना कार्य स्वतन्त्ररूप से करते हैं।**' आकाश आदि सभी द्रव्य अपनी पर्याय का कार्य वस्तुत्व गुण के कारण स्वतन्त्र करते हैं। लो, यह एक समझे तो इसमें सब समाहित हो जाता है। कोई किसी को करता नहीं हैं, वस्तुत्व गुण के कारण आकाश और आत्मा, पुद्गल और आत्मा-ऐसे सभी द्रव्य, अपनी-अपनी पर्याय का

कार्य करते हैं। कार्य करते हैं, आकाश भी करता है, आत्मा भी करता है परन्तु आत्मा में अन्तर है। आत्मा सचेतन होकर करता है। समझ में आया? जानकर जानने का, ज्ञान-दर्शन आनन्द के काम को करता है, वह दूसरे में है नहीं। समझ में आया?

अगुरुलघुत्व... '**सभी द्रव्य अपने-अपने गुणपर्यायों को ही अपने में रखते हैं।**' अपने-अपने गुणपर्यायों को रखते हैं। यह तो आकाश भी अपने गुणपर्यायों को रखता है, आत्मा भी अपने गुणपर्यायों को रखता है परन्तु यह जाननेवाला होकर रखता है, इतना अन्तर है। समझ में आया? सचेतन भगवान अपने गुणपर्याय को ज्ञान द्वारा साधकर अपने में रखता है, ऐसा एक स्वभाव चैतन्य में है, वह आकाश में नहीं है। देखो! आकाश बड़ा है, उसके साथ उपमा दी है। आकाश सर्वव्यापक है न? आकाश सर्वव्यापक है, उसके साथ (उपमा) दी है। आकाश जैसा आत्मा है, आकाश शुद्ध है ऐसा यह शुद्ध है। (आकाश) क्षेत्र से सर्वव्यापक है, यह चैतन्यभाव से सर्व को जाननेवाला सर्वव्यापी है। समझ में आया?

प्रदेशत्व... प्रत्येक (द्रव्य) अपना कोई भी आकार रखता है, कोई जगह घेरता है या नहीं? कोई भी पदार्थ जगह घेरता है, तो आकाश भी जगह को घेरता है, आत्मा भी जगह को घेरता है, परमाणु जगह को घेरता है, परन्तु अन्तर है। जगह घेरते हैं-इस अपेक्षा से समान है परन्तु जानने के-सचेतन अपेक्षा से अन्तर है-ऐसा सिद्ध करना है। घेरता है, वह ज्ञान अपने को जानता है; घेरते हैं, वे जड़ जानते नहीं-इतने क्षेत्र में असंख्यात प्रदेशी घेरे हुए हैं, वह चेतन जानता है। जड़ जानेगा जड़ को? शुद्ध की समानता एक अपेक्षा से होने पर भी उन दोनों में बड़ा सचेतनपने का अन्तर है। आहाहा..! समझ में आया?

थोड़ी स्वभाव की बात की है। सभी द्रव्य भावपने का स्वभाव रखते हैं। आकाश भी अपने भावपने को रखता है न? आत्मा भी अपने भावपने को, अस्ति, अस्तिभावपने(को) रखता है न? भावपने को रखता है, तथापि अन्तर है-ऐसा है। भावपना रखने में अन्तर नहीं परन्तु दूसरे ज्ञान और आनन्द में अन्तर है इसमें। जानना, आनन्द को जानना और आनन्द का वेदन करना, यह तो आत्मा में ही है। समझ में आया? हैं? क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :- इतने स्पष्टीकरण के बाद समझ में आया।

उत्तर :- स्पष्टीकरण करो, पण्डितजी! यह क्या कहते हैं? इतना समझाने के बाद समझ में आया? ऐसा निमित्त से फिर समझ में आया, पहले नहीं समझ में आता था-ऐसा कहते हैं।

'**परद्रव्यों के स्वभावों का परस्पर में अभाव है। दूसरे की सत्ता दूसरे में नहीं है।**' आत्मा में दूसरे पदार्थ की सत्ता नहीं है, आकाश में भी दूसरे पदार्थ की सत्ता नहीं है, इस प्रकार समान है। इसमें भी दूसरे पदार्थ का अभाव है; भगवान आत्मा में भी परद्रव्यों का अभाव है, पर में परद्रव्य का अभाव है परन्तु अन्तर इतना कि यह (आत्मा) सचेतनपना (रखता है)। '**अप्पा चेयणु वंतु**' चेतनवन्त। यह चेतनवन्त जाननेवाला भगवान है। यह शक्तियाँ कही, स्वभाव कहा, सभी गुण कहे परन्तु उनका जाननेवाला एक आत्मा है। दूसरे गुणों को उन्हें (स्वयं को) पता नहीं-ऐसा आत्मा में भी दूसरे गुण भले हों परन्तु वे जाननेवाले नहीं। समझ में आया? चेतनवन्त यह एक ही गुण इसका है कि स्वयं जाननेवाला है।

कायम रहने की अपेक्षा से प्रत्येक द्रव्य नित्य है। आत्मा भी नित्य है, वह भी नित्य है परन्तु नित्य-नित्य में अन्तर है। यह जानकर नित्य है-ऐसा जानता है, वे जाने बिना (अचेतनरूप से) नित्य रहते हैं। समझ में आया?

अनित्य स्वभाव... प्रत्येक पदार्थ पलटता है। प्रत्येक पदार्थ पलटता है, यह आत्मा स्वयं भी पलटता है और पर भी पलटते हैं, पलटने-पलटने में अन्तर है। जाननेवाला ज्ञान जानकर ज्ञान में पलटता है। समझ में आया?

एक स्वभाव... अनेक गुण होने पर भी वस्तु एक है न? प्रत्येक आत्मा या प्रत्येक परमाणु... गुण-पर्याय भले हो परन्तु वस्तु एक है। इस अपेक्षा से एक स्वभाव तो सबमें समान है। एक स्वभाव समान होने पर भी जानपने में (अन्तर है)।

अनेक स्वभाव समान हैं। '**सर्व द्रव्य अनेक स्वभावोंवाले होने से अनेकरूप है।**' गुण-पर्याय अनेक स्वभाव है या नहीं? आकाश में, परमाणु में अनेक स्वभाव है, गुण-पर्याय है। आत्मा में भी अनेक स्वभाव है, गुण-पर्याय है। अनेक स्वभाव होने पर भी अनेक स्वभाव से समान है, तथापि ज्ञानस्वभाव से अन्तर है। समझ में आया?

भेदस्वभाव... गुण-गुणी संज्ञा, लक्षण, भेद इनका स्वभाव है। प्रत्येक में भेद स्वभाव है, आत्मा में भेदस्वभाव है, पर में भेदस्वभाव है तथापि ज्ञानस्वभाव से भेद है।

अभेदस्वभाव... '**सर्व द्रव्यों में गुणस्वभाव सर्वांग, अखण्ड रहता है। एक-एक प्रदेश में सर्व गुण होते हैं। इसलिए अभेदस्वभाववान् है।**' सभी प्रदेश कहीं भिन्न नहीं है; सभी प्रदेश अखण्ड है, इस अपेक्षा से अभेदस्वभाव है। इसी तरह आत्मा में भी अभेद स्वभाव है परन्तु वह अभेदस्वभाव जाननेवाला है। यह अभेद है-ऐसा जाननेवाला है। अन्य को अभेदस्वभाव है, इसका पता नहीं है। कहो, समझ में आया?

भव्यस्वभाव... '**सभी द्रव्य अपने स्वभाव में ही परिणमने की योग्यता रखते हैं।**' आकाश भी अपने स्वभाव में अपने स्वभाव से परिणमित होने की योग्यता रखता है, आत्मा भी अपने में स्वभाव से परिणमित होने की योग्यता रखता है। योग्यता रखने पर भी, एक समानता होने पर भी ज्ञान-दर्शन, आनन्द से अन्तर है। यहाँ सचेतन की एक बात की है, जाननेवाला, जाननेवाला... उसे भी जाननेवाला, यह मैं मुझरूप रहने योग्य हूँ-ऐसा ज्ञान जानता है। जड़ में वह स्वभाव नहीं है।

अभव्यस्वभाव... '**समस्त द्रव्य परद्रव्य के स्वभावरूप कभी नहीं हो सकते।**' कोई पदार्थ... सब अभव्य हैं। सब द्रव्य भव्य हैं और सब द्रव्य अभव्य हैं। भव्य अर्थात् अपने स्वभाव में रहने की योग्यतावाले हैं। अभव्य अर्थात् पररूप नहीं होने की योग्यता है, पररूप नहीं होने की योग्यता है।

परमस्वभाव... भगवान आत्मा और प्रत्येक में (प्रत्येक द्रव्य में) परमस्वभाव है। परमपारिणामिकभाव से परमस्वभावी सभी पदार्थ हैं। परमाणु भी परमस्वभावी है, आकाश भी परमस्वभावी-पारिणामिकभाव से परमस्वभावी है। यह परमस्वभावी होने पर भी ज्ञान वह स्वयं आत्मा को जाननेवाला परमस्वभाव, यह ज्ञान की विशेषता है। कहो, समझ में आया?

'**सामान्यगुण और स्वभावों की अपेक्षा से जीवादि छहों द्रव्य समान हैं परन्तु विशेषगुणों की अपेक्षा से उनमें अन्तर है।**' बड़ा अन्तर है, दूसरों में इसके जाति के गुण हैं। जीव द्रव्य में ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, चेतना, सम्यक्त्व चार विशेष गुण हैं, वे आत्मा में ही हैं। जानना, प्रतीति करना, स्थिरता करना, आनन्द। वीर्य तो दूसरे में भले हो। आकाशादि पाँच द्रव्यों में वह नहीं है। आकाश, यह पाँच द्रव्य जड़-अचेतन हैं, आत्मा सचेतन है। '**मूलस्वभाव से सभी द्रव्य शुद्ध है।**' लो, यह शुद्ध आया तुम्हारा। शुद्ध है, उसे क्या ध्यान करना रहा? परन्तु यह शुद्ध है, उसे ध्यान करना है-ऐसा कहते हैं। उसका ज्ञान करना है।

'**जैसे आकाश निर्मल है, वैसे ही यह आत्मा निर्मल है।**' धर्मी को उचित है कि '**स्वानुभव प्राप्त करे...**' लो, अपना स्वभाव शुद्ध है-ऐसा अनुभव से प्राप्त करे। जड़ को शुद्धता है, उसे क्या प्राप्त करना? वह तो प्राप्त है ही। यह तो शुद्ध चैतन्य आनन्द... मूल चैतन्य आनन्द को अपने ध्यान द्वारा प्राप्त करे। ऐसा स्वभाव आत्मा में है। कहो, समझ में आया? '**यही निर्वाण का उपाय है।**' लो, यह एक ही मोक्ष का उपाय है। कौन सा? स्वानुभव प्राप्त करे, वह निर्वाण का उपाय है। दूसरे में वह स्वानुभव है नहीं। मुक्ति का उपाय भगवान आत्मा चेतन होने से चेतनरूप जागृत होकर अपना अनुभव करे, वही अपनी मुक्ति का उपाय है। परद्रव्य भले उसमें नहीं, इस अपेक्षा से सब समान होने पर ही उसमें ध्यान करके एकाग्र होकर केवलज्ञान हो सकता है। ऐसा यदि स्वरूप होवे तो वह चेतन में ही है। जड़ में, शरीर में, वाणी में है नहीं। कहो, समझ में आया?

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके ३४४ वचनामृत पर भाववाही प्रवचन, दि.२८-८-१९८३, प्रवचन क्रमांक-१६८ (विषय : भेदज्ञान)

ज्ञायक ध्रुव-नित्यानन्द प्रभुको देखनेवाला भूतार्थदर्शी हैं, पर शास्त्रको जाननेवाले अथवा एक समयकी पर्यायको देखनेवाले भूतार्थदर्शी हैं-ऐसा नहीं कहा। पूर्णानंदके नाथ प्रभुको निज-बुद्धिसे अर्थात् स्व-चैतन्य-और ढ़ली हुई ज्ञानदशारूप मतिज्ञान द्वारा, भगवान ज्ञायक स्वरूप है; और राग आकुलता स्वरूप है-ऐसा दोनोंका विवेक-भेद-विज्ञान करके वे अन्तर पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकको आविर्भूत कर आत्माका ज्ञायक रूपसे अनुभव करते हैं। ३४४

३४४. '**ज्ञायक ध्रुव-नित्यानन्द प्रभुको देखनेवाला भूतार्थदर्शी हैं,...**' समयसारकी ११वीं गाथाका विषय चल रहा है। ३४१से यह वचनामृत शुरू हुए हैं, ३४५ पर्यंत पाँच वचनामृत हैं।

मुमुक्षु :- पहले विश्वरूप भाव लिये अब यह सीधा लेते हैं।

पूज्य भाईश्री :- नहीं, अब विश्वरूप नहीं, परन्तु एकरूप भावकी बात करते हैं। अज्ञानीकी बात खोलकर बतायी, अब ज्ञानी कैसे परिणमते हैं?

'**ज्ञायक ध्रुव-नित्यानन्द प्रभुको देखनेवाला...**' अंतरंगमें जो आत्मस्वरूप-आत्मतत्त्व अनादिअनन्त है उसे ध्रुव कहते हैं। सदा है, शाश्वतस्वरूप है, जो जन्मता नहीं, मरता नहीं। जन्मता-मरता नहीं परन्तु उत्पाद-व्ययरूप होता नहीं, इसलिये उसे ध्रुव कहनेमें आता है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत् ये तीनमें विभाग किया। एक सत् जो कहा, सत् द्रव्य लक्षणं। सत् नाम सत्तारूप होना वह द्रव्यका लक्षण है। वह सत्तारूप क्या है? कि उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों सत्तामें दिखते हैं। एक सत्तामें जो तीन दिखते हैं उसमें यहाँ ध्रुवकी बात करनी है।

यह जैनदर्शनका विषय भेद-प्रेभदकी दृष्टिसे अपूर्व है। अभेदकी दृष्टिसे तो अपूर्व है ही, वह तो जगतमें कहीं प्राप्त हो ऐसा नहीं है, लेकिन भेद-प्रभेद जिसकी जितनी बुद्धि पहुँची उतनी धार्मिक साहित्यमें सर्व बुद्धिमान लोगोंने भेद-प्रभेदकी स्थापनी की है। तो भी वह भेद-प्रभेदका विषय केवलज्ञानगोचर जो भेद-प्रभेद हैं वहाँ तक तो कोई बुद्धिमान पहुँच नहीं सकता। इसलिये वह भी असाधारण है।

गुरुदेवश्री वहाँ तक लेते थे कि एक जीव, अनन्त पदार्थ अनन्त द्रव्योंमें एक जीवका भेद किया, उस एक जीवमें अनन्त गुण, अनन्त भेद किये, एकमें अनन्त किये। उन अनन्त गुणमें प्रत्येक गुणकी अनन्त पर्याय। अनादिअनन्त अवस्थाएँ होती हैं न। ... इसलिये अनन्तके अनन्त हुए। उस एक-एक पर्यायके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद। अनन्त, अनन्त और अनन्त। इतना भेद-प्रेभद देखो तो एक समयकी अनन्त कालमें अनन्ती पर्याय एक समयकी एक पर्यायमें अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। जिसका दूसरा छेद न हो सके उसे

अविभाव कहनेमें आता है। तारतम्य भेदसे।

इतना जो भेद है वह, जैनदर्शनके साहित्यके अलावा कोई साहित्यमें नहीं है। क्योंकि केवलज्ञान अनुसारी वाणी आयी है। श्रुतज्ञानमें केवलज्ञानकी प्रतीति हो एसा यह विषय है। श्रुतज्ञानमें केवलज्ञानकी प्रतीति। द्रव्यश्रुत है न यह? .. वह द्रव्यश्रुत है। लेकिन उसमें केवलज्ञानसे कहनेवालोंने कहा है और उसकी परंपरा चलती है उसकी इसमें प्रतीति होती है।

मुमुक्षु :- एक पर्याय, लेकिन सर्व गुणोंकी पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री :- एक गुणकी एक पर्याय लो, पूरे द्रव्यमें सर्व गुणोंकी पर्याय, अखण्ड पर्याय लो तो सर्व गुण आ गये। एक गुणकी एक पर्याय हो, ज्ञानगुणकी एक पर्याय लो, मतिज्ञानकी, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलमें मतिज्ञानकी एक समयकी पर्यायमें अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद है।

मुमुक्षु :- अर्थात् क्या कहनेका आशय है?

पूज्य गुरुदेवश्री :- जैसे किसीको ज्ञान कम है, किसीको मतिज्ञानमें ज्ञान अधिक है। उसमें प्रतिच्छेदोंमें कमी-बेसी है। उसीकी ज्ञानकी पर्यायमें फ़र्क़ पड़ता है कि नहीं? एक समयके ज्ञानसे दूसरे समयके ज्ञानमें फ़र्क़ है कि नहीं? दूसरे समयके ज्ञानसे तीसरेमें (फ़र्क़ होता है)। ज्ञानका विकास हुआ ऐसा कहते हैं कि नहीं? कम ज्ञान और ज्यादा ज्ञान ऐसा कहते हैं कि नहीं? कम क्रोध और ज्यादा क्रोध ऐसा कहते हैं कि नहीं? मन्द क्रोध और तीव्र क्रोध ऐसा कहनेमें आता है कि नहीं? यह चारित्रगुणकी पर्याय है। कम दुःख और ज्यादा दुःख ऐसा क्यों कहते हैं? यह आदमी बहुत दुःखी है, इसे सामान्य दुःख है। सुखगुणकी पर्याय है। उसमें जो कमी-बेसी है वह उसके प्रतिच्छेदको बताते हैं, जिसे तारतम्य भेद कहते हैं।

भावका तारतम्यभेद। एक समयकी एक गुणकी पर्यायमें अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद हैं। वह तो बुद्धिसे समझमें आये ऐसा है। परन्तु एक समयकी एक गुणकी पर्यायमें षट्गुण हानिवृद्धि है। बुद्धिमें आये ऐसा विषय नहीं है। असंख्य और अनन्तके भेद है। तीन असंख्यके और तीन अनन्तके। षट्गुण हानिवृद्धि है वह तो बुद्धिमें आये ऐसा नहीं है, केवलज्ञानका विषय है। परन्तु अगुरुलगुगुण जिससे साबित होता है, षट्गुण हानिवृद्धिसे।

मुमुक्षु :- ज्ञानीको इतना अन्दरमें निर्णय होता है? भावश्रुतज्ञानीको उतना ख्याल आ जाता है?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, आ जाता है।

मुमुक्षु :- इसका प्रकार इस तरह अनन्त, और उसका अनन्त और उसका अनन्त..

पूज्य भाईश्री :- उपयोग हो, किसीको उपयोग नहीं भी हो। उपयोग हो, किसीको उपयोग नहीं हो, लेकिन आ गया, उसके लब्धज्ञानमें सब आ गया, सब आ गया। तिर्यंचको सम्यक् मति-श्रुतज्ञान हुआ। उसे छः द्रव्य और नव तत्त्वका ज्ञान हुआ है? उसे देव-गुरु-शास्त्रका ज्ञान हुआ है? स्वयंभूरमणसमुद्रमें असंख्य सम्यग्दृष्टि वर्तमानमें हैं। पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक हैं। समुद्र है न इसलिये जलचर प्राणी हैं वह सब। पंचम गुणस्थानमें है, ठीक। छना हुआ पानी पीने मिलता होगा? गरम किया हुआ। आत्मस्थिरतासे श्रावकपना प्रगट होता है, पानी पीनेसे नहीं। परन्तु ठीक है, बाहरमें ऐसा व्यवहार होता है, उसका निषेध नहीं है। लेकिन उसकी पक़ड आती है वह गलत है। उसे धर्म मानना वह गलत है। धर्म तो आत्माके स्वरूपमें-से प्रगट होता है। पाँचवे गुणस्थान पर्यंत है। सर्वार्थसिद्धिका देव उससे नीचे है। चतुर्थ गुणस्थानमें है। भले एकावतारी है, मनुष्य होकर चरमशरीरि होकर मुक्तिमें जायेगा। परन्तु उस स्थितिमें तो उससे नीचे है, उसमें कोई दो मत नहीं है। एक अविरत सम्यग्दृष्टिका चतुर्थ गुणस्थान है, असंयत सम्यग्दृष्टि है। भले ही सर्वार्थसिद्धिमें हो। शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ सर्वार्थसिद्धिमें-से आये हैं। तीन तीर्थंकर हैं न? कामदेव, तीर्थंकर और चक्रवर्ती तीन पदवीधारक हैं और सर्वार्थसिद्धिमें-से आये हैं। अच्छा ही है न, ऐसा सब हो तो? दूसरा प्रकार बने उससे तो ऐसा प्रकार बने वह अच्छा है न? भाई! वह

सब कहनेकी बात है।

उसमें मूल चीज है वह अलग है, वह वीतरागता है। उससे सब महिमा है। बाकी कोई चीज जगतमें महिमालायक नहीं है। ऐसे तिर्यंचमें पंचम गुणस्थानवर्ती जो वीतरागता है वह आगे है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती वीतरागता पंचम गुणस्थानके जितनी नहीं है। उसने अन्दरमें एक कषायकी चौकड़ीको तोड़ा है। अप्रत्याख्यानावरणी कषायकी चौकड़ी उसने तोड़ दी है। इसने अनन्तानुबन्धीकी तोड़ी है, उसने अप्रत्याख्यानावरणीकी तोड़ी है। मुनि होता है तब तीसरी प्रत्याख्यानावरणीकी जाती है। प्रत्याख्यानको आवरण करनेवाली .. है। फिर संज्वलन बाकी रहा। वह पंच परमेष्ठीपदमें, जिसे मात्र संज्वलन कषाय वर्तता है।

मुमुक्षु :- मनुष्य और देवलोकसे तिर्यंचमें सम्यग्दृष्टि ज्यादा है?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, क्योंकि तिर्यंचमें संख्या अधिक है। चार गतिमें सबसे ज्यादा जीवोंकी संख्या तिर्चंयमें है। बाकी तीनोंमें उससे कम है। मनुष्यकी सबसे कम है। इसलिये उसे दुर्लभ कहनेमें आता है। बहुत कम मनुष्य होते हैं।

सम्यग्दृष्टि देवोंको भी ऐसा विकल्प आ जाता है कि कब इस मनुष्यपर्यायको प्राप्त करके, स्वरूप स्थिरता वर्धमान करके चारित्र अंगीकार केवलज्ञान प्राप्त करें। इसलिये उसे देवानुप्रिया ऐसा शब्दप्रयोग किया है। गुरुदेव उस वक्त ऐसा संबोधन करते थे न? क्यों देवानुप्रिया! ऐसा कहते थे। देवानुप्रिया अर्थात् आप मनुष्य हुए हो, थोड़ा समझो ऐसा कहते हैं। आप मनुष्य हों, इसका उपयोग करने लेने जैसा है। किसमें-से वह चला? उत्पाद-व्ययमें-से। यहाँ एक ध्रुव शब्द पड़ा है न?

ज्ञायक ध्रुव है। जो नित्य आनन्दस्वरूप है। परमात्मस्वरूप होनेसे उसे प्रभु कहनेमें आता है। अनन्त ऐश्वर्यका उसमें प्रभुत्व है। उसे जो देखनेवाले हैं अर्थात् उसे स्वस्वरूपरूप देखनेवाले हैं, उसे सदा देखनेवाले हैं, उसे कभी भूलनेवाले नहीं है उसे भूतार्थदर्शी कहनेमें आता है। भूतार्थ माने होना, भू-भव, होना। जो सदा ध्रुवपने है, उसे अर्थ नाम पदार्थ-भाव, जो सदा टिकनेवाला शाश्वत भाव है, ध्रुवभाव है उसे देखनेवालेको भूतार्थदर्शी कहनेमें आता है। वह भूतार्थदृष्टि है वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा कहना है।

'**देखनेवाला भूतार्थदर्शी हैं,...**' अथवा सत्य स्वरूप देखनेवाले हैं। अर्थात् शास्त्रको देखनेवाले या एक समयकी पर्यायको देखनेवाले भूतार्थदर्शी हैं ऐसा नहीं कहा है। शास्त्रको तो क्षयोपशमवाला भी देख सकता है। उसमें भी शास्त्रज्ञान होता है, सब नयज्ञान होता है। इस नयसे ऐसा कहा है, उस नयसे ऐसा कहा है, सब आये। वह परलक्ष्यी उघाडज्ञान वह वास्तविक ज्ञान नहीं है।

अध्यात्मके प्रकरणमें तो परसत्तावलंबी ज्ञानको ज्ञान ही नहीं कहते। वह ज्ञानके विभागमें नहीं जाता है, ज्ञान होनेपर भी। ऐसा है। मोक्षमार्गी जीव भी गणधरदेव बारह अंगकी रचना करते हैं। उस बारह अंगकी रचनामें जानेवाले उपयोगको ज्ञान नहीं कहते हैं। यह जैनदर्शनकी विशिष्टता है। वैसे तो श्रुतज्ञानकी शास्त्रकी पूजा की। वह तो फिर भी पुद्गल परमाणु है। परन्तु जिसे भावज्ञान कहनेमें आता है, नाम तो भाव है न, इसलिये भावज्ञान है। यह तो द्रव्यज्ञान हुआ। पुस्तक तो द्रव्यज्ञान हुआ। बाहरमें भले ही द्रव्यज्ञानकी पूजा करनेमें आती है। वह तो व्यवहार है। परन्तु भावज्ञानमें दो भेद है। जो अंतरंग आत्माका अवलंबन करके आत्माके साथ ज्ञानकी परिणति चलती है वह भावश्रुतज्ञान है और शास्त्रमें जाता है वह द्रव्यश्रुतज्ञान है। उसे द्रव्यश्रुतज्ञान वहाँ कहा है।

मुमुक्षु :- वहाँ भावमें दो द्रव्यश्रुत...

पूज्य भाईश्री :- भावज्ञानमें एक भावश्रुत और एक द्रव्यश्रुत है। जो द्रव्यश्रुतका अवलम्बन लेकर प्रवर्ते वह द्रव्यश्रुत है। ज्ञायकभावका अवलम्बन लेकर प्रवर्ते वह भावश्रुत है। एक समयकी पर्यायमें दो भाग। ज्ञानकी एक समयकी पर्यायमें ऐसे दो भाग साधकको है। जितना द्रव्यश्रुतरूप भाग है-भावज्ञानका द्रव्यश्रुतरूप भाव है, उसे ज्ञान नहीं कहते। उसे मोक्षका मार्ग

नहीं कहते।

मुमुक्षु :- साधकको ऐसे एक पर्यायके दो भेद ख्यालमें आ जाते हैं?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, बराबर ख्यालमें आते हैं। क्योंकि एक इस ओर जाता है और उस ओर जाता है। एक अन्दर जाता है और एक परसत्ताको अवलम्बता है, एक स्वसत्ताको अवलम्बता है। पर्याय एक और काम दो करती है। एक द्रव्यका अवलम्बन लेता है, एक भावका अवलम्बन लेता है। पर्याय एक और अवलम्बन भिन्न-भिन्न है। जो परको अवलंबता है उसका निषेध है। स्व अवलम्बनका अनुमोदन है। ऐसा है। जो आत्माको साधे वह साधकभाव है। और जो परको साधे वह बाधकभाव है। इसलिये उसे मोक्षमार्ग नहीं कहते हैं। वह रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें स्पष्ट किया। रहस्यपूर्ण चिट्ठीमें वह विषय आया है। और अध्यात्म सन्देश नामका जो अपना पुस्तक है उसमें उस विषय पर गुरुदेवश्रीका प्रवचन है। प्रवचन तो प्रत्यक्षतामें गुरुदेव अनेक सूक्ष्म भाव खोलते हैं। प्रवचनमें ठीक-ठीक विषय आ गया है लिखनेमें। वह तो भेद-प्रभेदका जैनदर्शनका विषय भी पूरा अलग है। वह लाईन पूरी अलग है। अलौकिक विषय है। लोकमें कहीं देखने नहीं मिले। लोकमें दिखाई दे नहीं और लौकिकदृष्टिवालेको ग्रहण नहीं हो कि ये क्या कहते हैं?

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार बोल नं-३४४ पर हुआ भाववाही प्रवचन. दि.२९-८-१९८३, प्रवचन नं. १६९. (विषय :- भेदज्ञान)

३४४. भूतार्थदर्शी कौन हैं? अर्थात् आत्माके सत्य स्वरूपको देखनेवाले, श्रद्धा करनेवाले कौन है? '**ज्ञायक ध्रुव-नित्यानन्त प्रभुको देखनेवाला भूतार्थदर्शी हैं।**' विशेष अर्थ किया है कि '**पर शास्त्रको जाननेवाले अथवा एक समयकी पर्यायको देखनेवाले...**' अर्थात् एक समयकी पर्यायकी श्रद्धा करनेवाले अथवा वर्तमान अवस्थाके वेदन जितना, जैसा ही मैं हूँ ऐसा पर्यायमात्रका स्व-रूपसे अवधारण करनेवाले भूतार्थदर्शी हैं, ऐसा नहीं कहा है। वह सब तो अभूतार्थदर्शी है ऐसा कहा है। वह स्पष्टीकरण किया है।

'**शास्त्रको जाननेवाले...**' यह बोल इसलिये लिया है कि सामान्यतः आत्माका ज्ञान नहीं होनेसे जगतके जीवोंको शास्त्रज्ञानके क्षयोपशमवाले जीव पर व्यामोह होता है कि यहाँ भी कुछ ज्ञान है। शास्त्रका जानपना हो, साथ-साथ बोलनेकी कुछ कला हो-वक्तृत्व कला कहते हैं, तो लोगोंको आकर्षण होता है कि यहाँ भी कुछ ज्ञान है ऐसा लगता है। ज्ञान अलग चीज है और शास्त्रका जानपना बिलकूल अलग वस्तु है।

यहाँ तो ज्ञायक ध्रुव नित्यानन्द प्रभुका अवलम्बन लेकर जानते हैं उसे भूतार्थदर्शी कहा है। शास्त्रज्ञानवालेको नहीं। वह तो ग्यारह अंग और नव पूर्वका उघाड अभविको भी होता है। अभविको ग्यारह अंग और नव पूर्व पर्यंतका उघाड तो होता है। वह कोई विशिष्ट बात नहीं है। लेकन बारह अंगका सार, ग्यारह अंग चौद पूर्व, बारह अंगका सारभूत जो ज्ञायकतत्त्व है, उसका श्रद्धा-ज्ञान हुआ वह अपूर्व है। उस विषयमें जो अनभिज्ञ है उसे व्यामोह होता है शास्त्रके क्षयोपशमवालेके प्रति।

कहते हैं कि वह भूतार्थदर्शी है ऐसा नहीं कहा है और सर्व मिथ्यादृष्टि मात्र वर्तमान वर्तती पर्यायका ही स्व-पनेका अनुभव करते होने, अपनेरूप अनुभव करते होनेसे और स्वपनेका धारण-अवधारण मात्र वर्तमान पर्याय जितना ही वेदनगोचर होता होनेसे वह भी भूतार्थदर्शी है ऐसा नहीं कहा है। फिर वह चाहे जिस वेशमें हो, कोई भी गिनतीमें गिना जाता हो, उन सबका इसमें निषेध आ जाता है। बहुत लोग

ऐसा मानते हैं। तो ऐसा कुछ नहीं चलता। जो मात्र पर्यायका ही वेदन करते हैं, अवलम्बन करते हैं, वेदन तो सब करते हैं, परन्तु अवलम्बन लेकर वेदन करते हैं और अपने ज्ञायकप्रभुका अंतर अवलम्बन जिसे नहीं वर्तता है, वह सब निज परमात्माका अनादर करके भूले हुए, एक समयकी पर्यायमें भूले हुए मिथ्यादृष्टि हैं। उन्हें यहाँ भूतार्थदर्शी नहीं कहते हैं। क्योंकि यहाँ गाथाका सिद्धान्त यह है कि '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो**'। यह पद है। भूतार्थका आश्रय करनेवाला वास्तवमें सम्यग्दृष्टि होता है। भूतार्थ तत्त्वका आश्रय न करे वह कभी सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकता या कभी सम्यक्दृष्टि हो नहीं सकता। यह सिद्धान्त है इस गाथाका।

'**पूर्णानंदके नाथ प्रबुको निज-बुद्धिसे अर्थात् स्व-चैतन्य-ओर ढली हुई ज्ञानदशारूप मतिज्ञान द्वारा, भगवान ज्ञायक स्वरूप है; और राग आकुलता स्वरूप है-ऐसा दोनोंका विवेक-भेदविज्ञान करके...**' विवेक करके अर्थात् भेदविज्ञान करके '**अन्तर पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकको आविर्भूत कर आत्माका ज्ञायक रूपसे अनुभव करेत हैं।**' जो भूतार्थका आश्रय करते हैं, उसमें दो बात ली है। एक ज्ञानकी पर्यायकी बात ली है और एक पुरुषार्थकी बात ली है। किसके द्वारा वह ज्ञायकका अनुभव करता है, उसमें मुख्य दो बात आ गयी।

'**पूर्णानंदके नाथ प्रभुको...**' अर्थात् अपना जो मूल परमात्म स्वरूप है उसको '**निज-बुद्धिसे...**' अंतरमें ढली हुई मतिज्ञानकी पर्याय द्वारा। बुद्धि अर्थात् जो बुद्धि शास्त्रमें भटकती है वह नहीं और कोई भी निमित्तमें भटके वह बुद्धि नहीं। आत्माको छोड़कर बाहर फिरे वह बुद्धि नहीं। ऐसा कहना है। लेकिन जो मतिज्ञान स्वभावसन्मुख हो, स्वरूप सन्मुख हो अर्थात् अंतर्मुख हो, ऐसी ज्ञानदशारूप मतिज्ञान द्वारा। उसे ज्ञानदशा कही गयी है। इसके अलावा जो है उसको ज्ञानदशा नहीं कहते हैं।

बाहरमें निज चैतन्यस्वरूपको, परमात्मतत्त्वको छोड़कर, अनादर करके, उपेक्षा करके जो ज्ञान बाहर जाता है उसे ज्ञानदशा ऐसा नहीं कहनेमें आता। उसे राग-द्वेषका उत्पादक कारण वह ज्ञान होता होनेसे परिभ्रमणका कारण होता है। नारकीको तो अवधिज्ञान होता है। सर्व नारकीको कुअवधिज्ञान होता है। मनुष्यमें नहीं होता। ठीक! वर्तमानमें तो करीब-करीब नहीं है, लेकिन नारकिओंको तो होता है। इसलिये उसे विभंग कहनेमें आता है। लेकिन वह ज्ञान उसे राग-द्वेषका उत्पादक होता है। अधिक क्षयोपशम हुआ तो तीव्र राग-द्वेष करता है।

एक तो पापके फलको वहाँ नर्कमें भोगता है, फिर भी भोगते-भोगते पाप पूरे नहीं होते। क्योंकि पुनः नया बन्धता है। वहाँ भी वह नये पाप बान्धता है। और कितने ही विशेष स्थितिवाले हैं वह तिर्यंचगतिमें उदयमें आते हैं। कोई नारकी मकरक देव नहीं बनता। ये तो परिणामका नियम है। कोई नारकी मरकर देव नहीं होता और कोई देव मरकर नारकी नहीं होता। दो गतिओंका सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह परिणामका नियम है। कारण-कार्य इसीमें है। पैरेग्राफमें नीचे है। जो पैरेग्राफ अलग किये हैं उसमें नीचे है इसलिये कल ध्यान नहीं गया। चयन किये गये बोल हैं उसमें ११वाँ बोल है। 'सम्यक्त्व रहित शुभोपयोग संसारसुख देता है।' सम्यग्दर्शन न हो और कषायकी मन्दता हो तो संसारसुख दे। देवपद दे या राजपद दे। वहाँ देव-गुरु-शास्त्रका निमित्त हो, ऐसे शुभोपयोगी अन्यमति होते हैं और जैनमति भी होते हैं। वहाँ सच्चे वीतराग देव-गुरु-शास्त्रका निमित्त हो, उसे लाभ होना हो तो हो। वीतराग देव-गुरु-शास्त्र है वह सम्यक्त्वका निमित्त है। फिर भी किसीको निमित्त हो और किसीको निमित्त न हो।

यहाँ उन्होंने वह बात कही है। हो अथवा न हो, कार्य और कारण नियम बिना है ऐसी रीति जाननी। ऐसा कहा। एक वचन कहा। कार्य और कारणकी सदृश्यता देखकर, मेल देखकर उपचार करनेमें आता है। निश्चयसे देखो तो कार्य और कारण नियम बिना है, ऐसी रीति जाननी। यह पूरा वचन लिया है। कल बात हुयी न? कारण-कार्यका मेल खाता

है या नहीं? सदृश्यता देखकर मेल कहनेमें आता है। नहीं तो ग्यारवें गुणस्थानसे जो गिरता है उसको क्या कारण कहोगे? कर्मोदयको कारण कहना पडेगा। कर्मका उदय तो जब श्रेणि चढता है तब छूटता है। कोई जीवको सर्व काल कर्मका उदय तो है। बाहरवें गुणस्थान पर्यंत आठों कर्मका उदय है। तेरहवें गुणस्थानमें चार कर्मका उदय है। कर्मका उदय यदि अवरोध करता हो तो सबको अवरोध करे, किसीको ऊपर चढने न दे। परन्तु पुरुषार्थकी हिनता होती है तब आरोप किया जाता है कर्मके उदय पर। ये तो मुख्य वस्तु है।

एक गुणवान है और एक अवगुणवाला है। यदि अवगुणवाला सुधरे तो ऐसा कहे कि गुणवानका संग किया इसलिये सुधरा। और यदि गुणवान बिगड़े तो ऐसा कहे कि अवगुणीका संग किया इसलिये बिगडा। संग तो दोनोंको परस्पर है। परिणाम देखकर उपचार किया जाता है। और दोनों प्रकार बनते हैं। कोई बार ऐसा बनता है कि बलवान सद्गुणी हो तो अवगुणवालेको गुणवान बनना पड़ता है, गुणवान बनता है। बलवान अवगुणी हो और कमजोर गुणवाला हो तो उसमें अवगुण होने लगते हैं। दोनोंमें बलवत्तरता किसकी है उस पर उसका फल आता है और फल आता है तब निर्बलता पर आरोप किया जाता है। अतः कार्य और कारण नियम रहित है। इसमें नियम क्या? वास्तवमें नियम रहित है। दोनों अपने-अपने उपादानसे परिणमते हैं। उपादानसे परिणमते हैं तब साथ रहे संयोग, निमित्त पर आरोप आता है।

मुमुक्षु :- अन्य पदार्थके साथ कारण-कार्य लागू नहीं होता, अपने साथ कारण-कार्य...?

पूज्य भाईश्री :- वह तो ठीक है। जैसा परिणाम हो वैसा फल मिले। वह फल स्वयंको प्राप्त हो या अन्यको प्राप्त हो? स्वयंको मिले न। परिणाम हो ऐसी स्थिति तो आत्माकी स्थिति है। परन्तु पूर्वपर्याय और उत्तरपर्यायको नियमबद्धपना इसलिये नहीं लिया जाता, बहुत गहन विषय है, बहुत गहन विषय है माने क्या? कि जो मोक्षमार्गमें आरूढ हुआ, ग्यारहवे गुणस्थान पर्यंत गया, उसने नीचे तो सब परिणाम चढनेके ही किये हैं। उसने कौन-सा परिणाम गिरनेका किया है?

जबतक मिथ्यादर्शन है, तबतक सब परिणाम मिथ्यात्वसहित होते हैं और कोई एक समयमें सम्यग्दर्शन होता है। तब मिथ्यादर्शनसहितके परिणाम कारण और सम्यग्दर्शनसहित परिणाम कार्य, कैसे लोगे? उसका जो क्रम है उस क्रममें फेरफार है उसको कारणका उपचार किया जाता है। उस जीवको पुरुषार्थ हो, उस जीवको मतिज्ञान और श्रुतज्ञान स्वसन्मुख हो, सम्यक्त्व सन्मुख हो, सम्यक्त्व सन्मुखके परिणाम हो, तब उसे चार लब्धि और करणलब्धि पर्यंतके परिणाम हो तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। करणानुयोगसे बताये, भिन्न-भिन्न प्रकारसे उसे दर्शाया जाता है।

मुमुक्षु :- सन्मुखता कारण हुयी?

पूज्य भाईश्री :- सन्मुखता कारण व्यवहारसे कहनेमें आती है, निश्चयसे नहीं। ऐसा है। क्योंकि कोई जीव सम्यक् सन्मुख होकर भी नीचे गिरता है। और सम्यक्त्वमें आनेके बजाय पुनः सम्यक्त्व सन्मुखतासे भी छूटकर, सम्यक् सन्मुख मिथ्यादृष्टिके बदले सामान्य मिथ्यादृष्टि भी बन जाये। ऐसा भी बनता है। ऐसा नहीं है कि जो सम्यक्त्व सन्मुख हो, वह सब सम्यक्त्वमें आते ही हैं।

मुमुक्षु :- विपरीत कारणका सेवन किया इसलिये?

पूज्य भाईश्री :- विपरीत कारणका सेवन कहो अथवा विपरीत परिणाम करे ऐसा कहो। जैसे परिणाम करे ऐसी स्थिति हो, ऐसा सामान्यरूपसे कहनेमें आता है। क्योंकि उसका नियत क्रम है। वहाँ नियत क्रम बताना है। परन्तु एक परिणाम दूसरे परिणामका कारण (ऐसा कहोगे तो) सम्यक् सन्मुखके परिणामको क्या कारण कहोगे? समझमें आया? इस ओर जाओ तो .. नामका दोष आयेगा। सम्यक्त्वको सम्यक् सन्मुखना परिणाम कारण। अने सम्यक् सन्मुखके परिणामका कारण कौन? फिर उसका कारण कौन? उसे निश्चयसे कारण-कार्य लागू नहीं पड़ सकता। क्योंकि एक जीव,

देखिये! बहुत विचारणीय, बहुत विशाल विषय है, एक जीव अनादि निगोदमें है, नित्यनिगोदमें है, अभी व्यवहारराशिमें भी नहीं आया है। दोइन्द्रिय भी नहीं हुआ है। वह जीव वहाँ-से सीधा पंचेन्द्रिय होता है। उसे किसका कारण कहोगे? उसे प्रचुर मिथ्यात्व और प्रचुर कषायके वेदनके अनन्त कालके संस्कार पड़े हैं।

मुमुक्षु :- वहाँ उस प्रकारकी मन्दता हुयी...

पूज्य भाईश्री :- नहीं, वह तो जब भी उसका पुरुषार्थ चालू होता है वह पुरुषार्थ स्वयं शुद्धि करता है। जिस कालमें जितना पुरुषार्थ हो, उसी कालमें उतनी अवस्थामें शुद्धि होती है। दूसरे समयमें जितना पुरुषार्थ करे उतनी शुद्धि उसी समय बढ़ती है। बस, वही कार्य-कारण है। उसी समय, उसी पर्यायमें है। पूर्व-उत्तर पर्यायमें नहीं लेकरके वही पर्याय कारण, वही पर्याय कार्य। ऐसा निश्चय है। कोई जीव मनुष्य हो, आठ वर्षकी आयुमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करे। सम्यग्दर्शन प्राप्त करे उतना ही नहीं, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके बाद श्रेणिमें आरूढ होता है और मुक्तिमें जाता है। आठ वर्षकी आयुमें मुक्तिमें जाये।

अब उसने चार गतिमें दूसरे कोई भव नहीं किये हैं। अन्यथा पंच परावर्तन तो अनन्त बार करता है। परिभ्रमण करनेवाला जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव पंच परावर्तन अनन्त बार कर चुका है। इस कुछ नहीं है। स्वरूपसे देखो तो सबका स्वरूप एकसमान है। कोई जीवका स्वरूप, भवि अथवा अभविका अन्य प्रकारसे है ऐसा नहीं है। इसलिये उस दृष्टिसे देखो तो कारण और कार्य नियम रहित है। क्या कहा? कारण और कार्य नियम रहित है। वह बात कही है, वह निश्चयकी बात कही है। नहीं तो सब जीवोंका एकसमान स्वभाव होनेपर भी उसका परिणमन एकसमान क्यों नहीं है? स्वभाव एकसमान और फिर भी उसका परिणमन एकसमान क्यों नहीं है? कार्य और कारण नियम रहित है। ऐसा है।

कुछएक मर्यादित नयम हैं उनका उल्लेख है कि नारकी है वह देव नहीं होता, देव हो वह नारकी नहीं होता। तीसरी नर्कसे निकले वह मुनि बन सकता है। लेकिन चतुर्थ नर्कसे निकलनेवाला मुनि नहीं बन सकता। जैसे स्त्रीदेह नहीं हो सकता। वैसे तीसरी नर्कसे बाहर आनेवाला मनुष्य हो और छठवें-सातवें गुणस्थान पर्यंत आ सकता है, मुक्ति पर्यंतके पुरुषार्थ तक आ सकता है, परन्तु चतुर्थ नर्कसे नहीं। चौथी, पाँचवीं, छठ्ठी, सातवीं। उतना पुरुषार्थ नहीं उत्पन्न होता। विपरीत पुरुषार्थमें चला गया है। ऐसे कुछ मर्यादाके नियम हैं उसे कारण-कार्यके साथ जोडनेमें आता है। ऐसी कुछएक मर्यादा बतायी है। इसलिये मर्यादित बात है। जिसे कारण-कार्यकी श्रृंखलामें दिखायी गयी है। लेकिन वह वस्तुस्थिति है। निश्चयसे ऐसी ही वस्तुस्थिति है।

मुमुक्षु :- पाँच पांडवमें-से दो भाईको...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सहदेव और नकुल। शेत्रुंजयसे गये हैं।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- हाँ, उसकी कहाँ ना है। परिणामका कोई नियम ही नहीं है ऐसा कुछ नहीं है। नहीं तो क्या होगा? शुभपरिणाम करे उसे अशुभका फल मिले? शुभका ही मिले।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- हाँ, अर्थात् मर्यादित कारण-कार्य है। उसकी मर्यादा है। वह मर्यादितपने कहनेमें आता है। निमित्त कुछ नहीं करता, सिद्धान्त है कि नहीं? फिर भी कोई जीवको देशनालब्धिके बिना सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो ऐसा कभी नहीं बनता। 'बिना नयन पावे नहीं, बिना नयनकी बात, सेवे सद्गुरुके चरण तो पावे साक्षात्'। 'बिना नयन पावे नहीं, बिना नयनकी बात' उसमें वह बात ली है। 'सेवे सद्गुरुके चरण सो पावे साक्षात्'। उसमें नीचे लिया है कि अनादि स्थिति ऐसी है। 'यही अनादि स्थित'। ऐसी ही कोई अनादिकी स्थिति है। अतः देव-गुरु-शास्त्रमें कुछ करते नहीं है इसके बावजूद निमित्तत्व नहीं है ऐसा नहीं कह सकते। अनन्त गुणधर्म हैं। उसमें निमित्तत्व नामका उसका धर्म है। वह भी नहीं है ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- क्षायिक सम्यग्दर्शन केवलीके पादमूलमें ही होता है।

पूज्य भाईश्री :- क्षायिक सम्यग्दर्शन केवलज्ञानीके सद्भावमें ही होता है। अन्य किसी प्रकारसे नहीं होता। ऐसा है। इसलिये कुछ मर्यादित नियम है उसे कारण-कार्यकी श्रृंखलामें जोडनेमें आया है, फिर भी वह वस्तुस्थिति है। उस-उस उपादानमें वैसी-वैसी वस्तुस्थिति है ऐसा जानना चाहिये।

मुमुक्षु :- तो ही उसे व्यवहार कहे न?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, व्यवहार ही है। दोके बीच तो व्यवहार ही होता है न। पूर्व-उत्तर पर्याय लो अथवा दो पदार्थ लो, जहाँ दो-द्वैत हुआ वहाँ दोनोंके बीच जो कुछ सन्धि होती है वह सब व्यवहारका विषय है। एकमें भी भेद करे तो भी व्यवहार है, तो दोके बीच तो व्यवहार न हो ऐसा सवाल नहीं रहता।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- वह तो कहा, तीसरी नर्कसे निकलनेवाला जाता है। तीसरी नर्कसे निकले वह मुनिपना अंगीकार कर सकता है, वह मुक्तिमें जा सकता है। मुनिपना अंगीकार करे इसलिये मुक्तिमें बाधा नहीं है। जो जीव मुनिदशामें आ सकता है छठवें-सातवेंमें उसे मुक्तिकी बाधा नहीं है। इस कालमें भले नहीं है, वह इस कालकी मर्यादित बात है। अन्यथा मुनि हो वह मुक्तिके पुरुषार्थयोग्य जीव है। यहाँ कोई छठवें-सातवेंमें मुनिदशामें आये तो इस क्षेत्रमें जन्म लेकर उसने पर्याप्त कार्य किया, ऐसा कह सकते हैं। परन्तु चौथी नर्कसे निकले उस जीवको मुनिदशा नहीं आती, वह मुनि नहीं हो सकता। पाँचवी नर्कसे निकले वह पाँचवे गुणस्थानमें नहीं आ सकता।

मुमुक्षु :- चतुर्थ गुणस्थानमें आये।

पूज्य भाईश्री :- चतुर्थ गुणस्थानमें तो सातवीं नर्कमें हो तो भी प्रगट करे। परन्तु पाँचवी या छठ्ठी... छठ्ठी नर्कसे आया हुआ जीव पंचम गुणस्थानमें आरूढ नहीं हो सकता। उतना पुरुषार्थ नहीं होता। वह सब परिणाम आश्रित कुछ नियम मर्यादितरूपसे दर्शाये गये हैं। उसकी मर्यादा दर्शायी है। वह उस द्रव्यकी वस्तुस्थिति है। उस द्रव्यमें उत्पन्न हुयी वस्तुस्थिति है। अनादि निगोदमें-से निकले, मनुष्यत्व प्राप्तकर, सम्यग्दर्शन प्राप्तकर केवलज्ञान प्राप्त करे। परन्तु छठ्ठी नर्कसे निकला हो तो पाँचवे गुणस्थानमें नहीं आ सकता। चौथीमें-से बाहर आया हो तो मुनि नहीं बन सकता। इस प्रकार मर्यादा है। क्योंकि वहाँ कषायकी तीव्रताकी प्रुचरता उतनी बढ़ जाती है कि उसे उस भवमें ही वह मर्यादा लागू होती है। दूसरे भवमें...

सारांश क्या? सारांश यह है कि कोई भी वर्तमान चलते हुए विकल्पको कारणरूप नहीं लेकर, वर्तमान चलते हुए ज्ञानको कारणरूप नहीं देखकर, वर्तमान चलते हुए पुरुषार्थको कारणरूप नहीं देखकर, नहीं देखकर माने अवलम्नब नहीं लेकरके, ज्ञायकका अवलम्बन लेनेका सर्व कालमें नया-नया जोरदार पुरुषार्थ होना चाहिये। अभी इतना कार्य किया इसलिये अब मुझे दूसरे समयमें थोड़ा लाभ होगा, भविष्यमें लाभ होगा, अभी मैं यह शास्त्र पढ़ता हूँ इसलिये उसका लाभ मिलेगा, अभी ज्ञायकका स्मरण किया इसलिये मुझे लाभ होगा, इसप्रकार वर्तमान पर्यायका अवलम्बन लेकर भविष्यकी पर्यायमें उसका फल देखनेका प्रयत्न नहीं करना। भाई! पर्यायका फल आता है कि नहीं? यह उसका उत्तर है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य भाईश्री :- इस तरह मत देखो। भले नकुल और सहदेवको वह फल आया, हमें ऐसे नहीं देखना है। पाँच पांडवकी बात कही न? परिषह-उपसर्ग सबको समान था। उपसर्ग हुआ था। उपसर्ग आया, पाँचोंको समान आया, लेकिन तीन मोक्ष पधारे। और दो सर्वार्थसिद्धिमें गये। तैंतीस सागरकी जेल हुयी। ऐसा शुभभाव किया न? महामुनि हैं, विचार तो ऐसा आया, मेरे भाई हैं ऐसा नहीं, वह तो टूट गया था। महामुनि हैं। युधिष्ठिर, भीम, अर्जून महामुनि हैं। अरे..रे..! ऐसे महामुनिको ऐसा उपसर्ग? क्या होता होगा उनको? वे तो श्रेणि चढे, अभी केवलज्ञान लेंगे। यह विकल्प

आया और तैंतीस सागरकी जेलमें गये। सर्वार्थसिद्धिमें तैंतीस सागरकी आयु है। बड़ा जंक्शन हो गया। बादमें भले ही वहाँ-से निकलकर मोक्षमें जायेंगे। क्यों? मुनिपना तो सबने लिया था। इनको विकल्प उत्पन्न हुआ और उनको नहीं हुआ, कारण क्या? क्या कारण लोगे? कार्य और कारण नियम रहित है। उसका कारण नहीं हो सकता।

मुमुक्षु :- अपने पुरुषार्थकी कचास?

पूज्य भाईश्री :- वह पर्याय उत्पन्न हुई, वही कारण और वही कार्य है। आगे-पीछेका कुछ लागू नहीं पड़ता है। पाँचो छठवें-सातवें गुणस्थानमें विराजमान हैं। फिर जो नहीं समझते हैं वह ऐसा लेते हैं कि इनको कर्मका उदय आया। तो क्या उनको नहीं था? उनको भी कर्मका उदय था। यह उपसर्ग था वह सबको कर्मका ही उदय था। कर्मका उदय तो पाँचोंको था। दोको कर्मका उदय लागू पड़ा और तीनको लागू नहीं पड़ा? उदय तो एकसमान था। अरे..! उससे अधिक कर्मका उदय हो।

(शेष अंश अगले अंक में....)

नवीन प्रकाशन (अध्यात्म सुधा भाग-१२) (गुजराती)

पूज्य भाईश्री शशीभाईके ८६वें जन्म जयंति महोत्सव प्रसंग पर पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत ग्रन्थ पर प्रकाशित हो रहे शब्दशः प्रवचनोंकी श्रृंखला अंतर्गत अध्यात्म सुधा, भाग-१२की अर्पण विधि दि. १३-१२-२०१८ कि दिन तक अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक की गयी। जिन मुमुक्षु भाई-बहनोंको स्वाध्यायार्थ पुस्तक मंगवानी हो, वे ट्रस्टके कार्यालयमें संपर्क करके मंगवा सकते हैं।

संपर्क :- वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेक वाड़ी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर.

पूज्य भाईश्री शशीभाई का ८६वां जन्मजयंति महोत्सव आनंदोल्लासपूर्वक संपन्न

पूज्य भाईश्री शशीभाई का ८६वां जन्म जयंति महोत्सव दि. ११-१२-२०१८ से दि. १५-१२-२०१८ तक अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया गया। इस महोत्सव के उपलक्ष्यमें पंच दिवसिय मंडलविधान रखा गया था। पूज्य भाईश्री शशीभाई के ओडियो तथा वीडियो सीडी प्रवचनों का लाभ लिया गया। दि.१४-१२-२०१८ के दिन एक भव्य रथयात्रा का आयोजन किया गया, जो शहर के मुख्य मार्ग पर होती हुई शाम ५-०० बजे जिनमंदिर में समाप्त हुई। पारणाझुलन, जन्मवधामणा आदि कार्यक्रम भक्ति सहित मनाया गया। इस प्रसंग पर कोलकाटा, आग्रा, मुंबई, अहमदाबाद, सोनगढ़ इत्यादिक स्थान से मुमुक्षु लोग पधारे थें।

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८

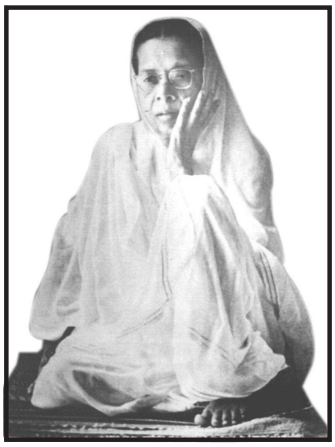

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.१ A

प्रश्न :- दो द्रव्य के बीच में कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है, फिर भी जहाँ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध...

समाधान :- उस प्रकारसे समझकर उसका उस प्रकार का वर्तन होना चाहिये।

प्रश्न :- आपने एक शब्दप्रयोग किया कि समझकर वर्तन भी उस प्रकार का होना चाहिये।

समाधान :- मात्र समझन हो तो वह शुष्कता को प्राप्त हो जाती है। समझन हो वह बराबर है, वह लाभ का कारण है, लेकिन उसका वर्तन भी उसप्रकार का होना चाहिये। निश्चय भूतार्थ है, व्यवहार अभूतार्थ कहने में आता है। अभूतार्थ यानी कोई वस्तु ही नहीं है (ऐसा नहीं)। उसकी अपेक्षासे वह बराबर है, उसकी अपेक्षासे वह सत्यार्थ है ऐसा आता है। भूतार्थ की अपेक्षा असत्यार्थ है ऐसा आता है। उस प्रकारसे अभूतार्थ हो कि कोई वस्तु ही नहीं है, तो बीच में साधकदशा ही नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शन होने के बाद तुरन्त केवलज्ञान हो जाय, साधकदशा बीच में नहीं हो तो। पर्याय बीच में होती है उसमें अल्पता है। वैसे, अभी तो मुमुक्षु है और आत्मा का प्रयोजन है, उसमें बीच में यह सब आता है। अशुभसे बचने हेतु शुभभाव आते हैं। आश्रय आत्मा का लेना है।

प्रश्न :- बीच में आता है ऐसा जानकर उस प्रकार का उसका वर्तन नहीं हो तब तक यथार्थ नहीं है।

समाधान :- यथार्थ नहीं है। मुझसे हो नहीं सकता, लेकिन अशुभसे बचने हेतु शुभभाव आते हैं। आत्मा का आश्रय होता है उसके साथ यह होता है, ऐसा समझता है। अन्दर हृदयपूर्वक, रुचिपूर्वक उसे समझता है। निर्णय कर लिया हो कि वह छूट गया। ऐसे नहीं। उसका उसप्रकार का वर्तन अन्दरसे आत्मा के प्रयोजन सहित हो उसे वर्तन हुए बिना रहता नहीं।

प्रश्न :- आत्मा के प्रयोजनपूर्वक वैसा व्यवहार का वर्तन भी आये बिना रहता नहीं।

समाधान :- आये बिना रहता नहीं।

प्रश्न :- जैसे सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद निरंतर पुरुषार्थरूपसे परिणमने पर वह सहज ही टिका रहता है और आगे बढता है, वैसे यहाँ भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के पहले भी जो निर्णय किया उस निर्णय को टिकाये रखने हेतु और आगे बढने के लिये उसे भी इसप्रकार का निरंतर अपेक्षित पुरुषार्थ चालू रखना चाहिये।

समाधान :- चालू रखना चाहिये। जो निर्णय किया है उसमें ढीलास नहीं आये, शुष्कता नहीं आवे इस कारण उसे अशुभसे बचने हेतु शुभभाव आये, देव-गुरु-शास्त्र की महिमा, शास्त्र स्वाध्याय, सत्संग, विचार, वांचन, स्वाध्याय आदि होता है। बारंबार जो विचार किया हो उसका रटन करे। वह सब आता है। नहीं तो अनादि का जो प्रवाह है उसमें चला जाता है।

प्रश्न :- भ्रान्ति यह हो जाती थी कि निर्णय तो हो गया है। निर्णय हो गया है और मुझे तो

यथार्थ निर्णय है, यथार्थ निर्णय है फिर कहाँ...

समाधान :- निर्णय हो गया कि यह सब भिन्न है, अब क्या करना? वैसे। अभी बाकी है, अनादि का जो प्रवाह है उसमें बह जाता है। अनादि का प्रवाह वैसा है और पुरुषार्थ की मंदता होनेपर उसे देर नहीं लगती, अनादि के प्रवाह में बह जाता है। तीव्र पुरुषार्थ हो तो चाहे जैसे संयोग में स्वयं खड़ा रहता है। बाह्य संयोग असत्संग आदि का हो तो अन्दर बहुत खटकता है कि ये क्या? मुझे तो कुछ अलग करना है, ऐसा करके किसीको पुरुषार्थ बढ भी जाता है। लेकिन बहुभाग तो उसे सत्संग का आदर होना चाहिये।

प्रश्न :- जिसे एकदम होता है अथवा निमित्त नहीं होता, उसे भी आदर तो होता है।

समाधान :- उसे आदर तो होता ही है, लेकिन उसमें फँस गया फिर क्या हो?

प्रश्न :- बाकी तो बहुभाग जीवों की तो, जैसे आपने कहा, वैसी ही दशा होती है कि यदि पुरुषार्थ मन्द पड़ गया, रुचि मन्द पड़ गई इसलिये पुरुषार्थ मन्द हो जाता है और फिर कहीं न कहीं अटक जाता है।

समाधान :- रुचि, निर्णय एक ओर पड़ा रहे। निर्णय तो मैने किया और अनादि के प्रवाह में, बाह्य कार्यों में और अनादि के अशुभभाव में दूर चला जाता है। पुरुषार्थ मन्द पड़े तो।

श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मीओं को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र.....

पुण्यवान मुमुक्षुओंको उल्लासित प्रवचनोंका लाभ हुआ, जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई। पुण्यअभावयोगसे इस अवसरसे मुझे वंचित होना पडा, इसका खेद रहा। श्री गुरुदेवके प्रवचनोंका मुख्य सार मैंने यह लिया है :

वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूँ। वर्तमानसे ही देवादिक पर अथवा उनआश्रित रागसे किंचित्मात्र लाभका कारण नहीं। लाभ मानना ही अलाभ है। वेदनके अलावा अन्य कोई क्रिया जीवकी नहीं। शरीरआश्रित अथवा परआश्रित आकुलित वेदनको, समकाले ज्ञानवेदन द्वारा, गौण करते-करते नाश करना मुमुक्षुओंका ध्येय है। यह ज्ञानवेदन अखण्ड त्रिकाली अपरिणामी ध्रुव अस्तित्वमयी स्वपनेके अनुभवमें सहज ही उदय होता है। रागसे भेद करता (ज्ञान) निःशंकित निराकुल सुख वेदनके साथ प्रत्यक्ष प्रमाणरूप प्रगट होता है। वृद्धि पामता-पामता अनंत सुख व ज्ञानका लाभ करता है। अप्रसिद्ध अवेदक मुख्य अखण्ड स्वभावमें श्रद्धाके स्वअस्तित्वरूपमें प्रसरते ही प्रसिद्ध वेदन गौण होकर एक ही काल त्रिकाली व वर्तमान दोनों भावोंका अनुभव होता है। यह ही भेदज्ञान है। रागसे पृथक् ज्ञानका अनुभव ऐसे ही होता अन्यथा नहीं। योग होनेसे अप्रैल में श्री गुरुदेवकी जन्मतिथि पर मिलना होगा।

- शुद्धात्मस्नेही निहालचन्द्र

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (जनवरी-२०१९) का शुल्क श्रीमति मनीषाबहेन हेमंतभाई शाह, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

१८०

बंबई, मागसिर सुदी ४, सोम, १९४७

परम पूज्यश्री,

कलके पत्रमें सहज व्यवहारचिंता बतायी थी; उसके लिये सर्वथा निर्भय रहना। रोम रोममें भक्ति तो यही है कि ऐसी दशा आनेपर अधिक प्रसन्न रहना। मात्र दूसरे जीवोंके दिल दुःखानेका कारण आत्मा हो वहाँ चिंता सहज करना। दृढ़ज्ञानकी प्राप्तिका यही लक्षण है।

मुनिको समझानेकी माथापच्चीमें आप न पड़े तो अच्छा। जिसे परमेश्वर भटकने देना चाहता है, उसे निष्कारण भटकनेसे रोकना यह ईश्वरीय नियमका भंग करना किसलिये न माना जाये?

रोम रोममें खुमारी आयेगी, अमरवरमय ही आत्मदृष्टि हो जायेगी, एक 'तू ही, तू ही' का मनन करनेका अवकाश भी नहीं रहेगा, तब आपको अमरवरके आनन्दका अनुभव होगा।

यहाँ यही दशा है। राम हृदयमें बसे हैं, अनादिके (आवरण) दूर हुए हैं। सुरति इत्यादिक खिले हैं। यह भी एक वाक्यकी बेगार की है। अभी तो भाग जानेकी वृत्ति है। इस शब्दका अर्थ भिन्न होता है।

नीचे एक वाक्यको तनिक स्याद्वादमें घटाया है-

''इस कालमें कोई मोक्ष जाता ही नहीं है।''

''इस कालमें कोई इस क्षेत्रसे मोक्ष जाता ही नहीं है।''

''इस कालमें कोई इस कालका जन्मा हुआ इस क्षेत्रसे मोक्ष जाता ही नहीं है।''

''इस कालमें कोई इस कालका जन्मा हुआ सर्वथा मुक्त नहीं होता।''

''इस कालमें कोई इस कालका जन्मा हुआ सब कर्मोंसे सर्वथा मुक्त नहीं होता।''

अब इसपर तनिक विचार करें। पहले एक व्यक्ति बोला कि इस कालमें कोई मोक्ष जाता ही नहीं है। ज्यों ही यह वाक्य निकला कि शंका हुई-इस कालमें क्या महाविदेहसे मोक्षमें जाता ही नहीं है? वहाँसे तो जाता है, इसलिये फिर वाक्य बोलो। तब दूसरीबार कहा; इस कालमें कोई इस क्षेत्रसे मोक्षमें नहीं जाता। तब प्रश्न किया कि जंबु, सुधर्मास्वामी इत्यादि कैसे गये? वह भी तो यही काल था, इसलिये फिर वह व्यक्ति विचार करके बोला-इस कालमें कोई इस कालका जन्मा हुआ इस क्षेत्रसे मोक्षमें नहीं जाता। तब प्रश्न किया कि किसीका मिथ्यात्व जाता होगा या नहीं? उत्तर दिया, हाँ जाता है। तब फिर कहा कि यदि मिथ्यात्व जाता है तो मिथ्यात्वके जानेसे मोक्ष हुआ कहा जायेगा या नहीं? तब उसने हाँ कही कि ऐसा तो होता है। तब कहा-ऐसा नहीं परन्तु ऐसा होगा कि इस कालमें कोई इस कालका जन्मा हुआ सब कर्मोंसे मुक्त नहीं होता।

इसमें भी अनेक भेद हैं, परन्तु यहाँ तक कदाचित् साधारण स्याद्वाद मानें तो यह जैनके शास्त्रके लिये स्पष्टीकरण हुआ माना जायेगा। वेदांत आदि तो इस कालमें सर्वथा सब कर्मोंसे छुड़ानेके लिये कहते हैं। इसलिये अभी भी आगे जाना होगा। उसके बाद वाक्य सिद्धि होगी। इस तरह वाक्य बोलनेकी अपेक्षा रखना उचित है। परन्तु ज्ञान उत्पन्न हुए बिना इस अपेक्षाकी स्मृति रहना सम्भव नहीं है। या तो सत्पुरुषकी कृपासे सिद्धि होती है।

अभी इतना ही। थोडा लिखा बहुत समझें। ऊपर लिखी हुई माथापच्ची भी लिखना पसन्द नहीं है। शक्करके श्रीफलकी सभीने प्रशंसा की है; परन्तु यहाँ तो अमृतका नारियलका पूरा वृक्ष है। तो यह कहाँसे पसन्द आये? नापसन्द भी नहीं किया जाता।

अन्तमें आज, कल और सदाके लिये यही कहना है कि इसका संग होनेके बाद सर्वथा निर्भय रहना सीखें। आपको यह वाक्य कैसा लगता है?

वि.रायचन्द।

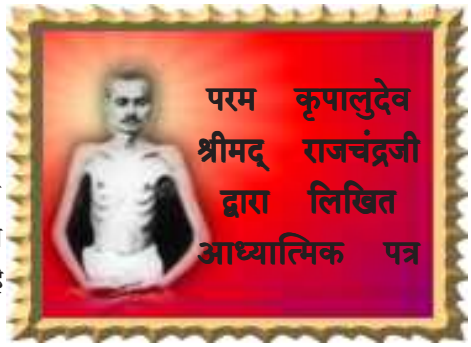

१७७

बंबई, कार्तिक वदी १४, गुरु, १९४७

सुज्ञ भाई श्री त्रिभोवन,

आपका एक पत्र मिला था। मनन किया।

अंतरकी परमार्थवृत्तियोंको थोड़े समय तक प्रकट करनेकी इच्छा नहीं होती। धर्मेच्छुक प्राणियोंके, पत्र, प्रश्न आदि तो अभी बंधनरूप माने हैं, क्योंकि जिन इच्छाओंको अभी प्रगट करनेकी इच्छा नहीं है उनके अंश (निरुपायतासे) उस कारणसे प्रगट करने पड़ते हैं।

नित्य नियममें आपको और सभी भाईयोंको अभी तो इतना ही बताता हूँ कि जिस जिस राहसे अनंतकालसे पकड़े हुए आग्रहका, अहंत्वका और असत्संगका नाश हो उस राहमें वृत्ति लानी; यही चिंतन रखनेसे, और परभवका दृढ़ विश्वास रखनेसे कुछ अंशोंमें उसमें सफलता प्राप्त होगी।

वि.रायचन्दके यथायोग्य।

❁

१७८

बंबई, कार्तिक वदी ३०, शुक्र, १९४७

सुज्ञ भाई श्री अंबालाल,

यहाँ आनंदवृत्ति है। आपकी और दूसरे भाईयोंकी आनंदवृत्ति चाहता हूँ। आपके पिताजीके धर्मविषयक दो पत्र मिले। इसका क्या उत्तर लिखना? इसका बहुत विचार रहा करता है।

अभी तो मैं किसीको स्पष्टरूपसे धर्म बतानेके योग्य नहीं हूँ, अथवा वैसा करनेकी मेरी इच्छा नहीं रहती। इच्छा न रहनेका कारण उदयमान कर्म हैं। उनकी वृत्ति मेरी ओर झुकनेका कारण आप इत्यादि हैं, ऐसी कल्पना है। और मैं भी इच्छा रखता हूँ कि कोई भी जिज्ञासु हो वह धर्मप्राप्तोंसे धर्म प्राप्त करे; तथापि मैं वर्तमानकालमें रहता हूँ, वह काल ऐसा नहीं है। प्रसंगोपात्त मेरे कुछ पत्र उन्हें पढ़ाते रहिये अथवा उनमें कही हुई बातोंका उद्देश आपसे जितना समझाया जाये उतना समझाते रहिये।

पहले मनुष्यमें यथायोग्य जिज्ञासुता आनी चाहिये। पूर्वके आग्रह और असत्संग दूर होने चाहिये। पूर्वके आग्रह और असत्संग दूर होने चाहिये। इसके लिये प्रयत्न कीजिये। और उन्हें प्रेरणा करते रहेंगे तो किसी प्रसंगपर अवश्य सम्भाल लेनेका स्मरण करूँगा। नहीं तो नहीं।

दूसरे भाइयोंको भी, जिसके पाससे धर्म प्राप्त करना हो उस पुरुषके धर्मप्राप्त होनेकी पूर्ण परीक्षा करनी चाहिये, यह संतकी समझने जैसी बात है।

– वि. रायचंदके यथायोग्य।

❁

१७९

बंबई, कार्तिक, १९४७

उपशमभाव

सोलह भावनाओंसे भूषित होनेपर भी स्वयं जहाँ सर्वोत्कृष्ट माना गया है वहाँ दूसरेकी उत्कृष्टताके कारण अपनी न्यूनता होती हो और कुछ मत्सरभाव आकर चला जाये तो उसे उपशम भाव था, क्षायिक न था, यह नियम है।

❁

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१८ पर...)